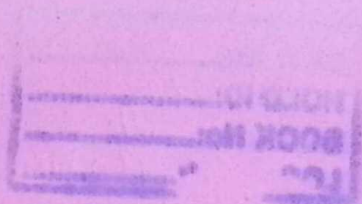


कविकंकण

कृत

मृगाङ्कशतकम्

अनुवाद एवं सम्पादन

डॉ० भारत भूषण शर्मा



ज्योत्स्ना प्रकाशन, जम्मू

प्रथम संस्करण : 1992

प्रकाशक : ज्योत्स्ना प्रकाशन
1249/6 नानक नगर,
जम्मू-180004



मूल्य : 20/– (बीस रुपये मात्र)

मुद्रक—नरेन्द्रा प्रिन्टर्स, 8/324 फ्रीगंज रोड, आगरा-4 ।

भूमिका

भारतीय वाङ्मय की अनेक रचनाएँ अभी पाठकों के समक्ष उपलब्ध नहीं हो पायी हैं जिन्हें सपादित करके पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने की पूर्ण आवश्यकता है इन अप्रकाशित पांडुलिपियों में विभिन्न विषयों से संबंधित अनेक कवियों की रचनाएँ बिखरी पड़ी हैं जिनके संकलन और संपादन से न केवल भारतीय वाङ्मय के इतिहास की काल-क्रमिकता निश्चित की जा सकती है वरन् साहित्य की विभिन्न धाराओं की अविच्छिन्नता भी स्थापित की जा सकती है। प्रस्तुत काव्य-ग्रंथ इसी प्रकार की एक रचना है जिसमें चंद्रमा के भीतर दिखायी पड़ने वाले काले धब्बे के बारे में कवि ने विभिन्न उद्भावनाओं के साथ अपनी काव्याभिव्यक्ति की है। शतक की परंपरा में लिखा गया यह काव्य-ग्रंथ जहाँ एक ओर भाषा के विकास की कड़ी को प्रस्तुत करता है वहीं दूसरी ओर काव्यालंकार की दृष्टि से एक अनूठी छाप छोड़ता है। कवि के काल के संबंध में विद्वान लेखक ने विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सामग्री का अध्ययन करके कवि के रचना काल को निश्चित करने का प्रयास किया है। सस्कृत के विभिन्न काव्यों में बिखरे हुए 'मृगांकशतकम्' के उद्धृत श्लोक इस बात की पुष्टि करते हैं कि कविकंकण संस्कृत कविता के समर्थ हस्ताक्षर हैं।

मुक्तकों की शैली में लिखा गया यह शतक एक विषय की ओर उन्मुख होते हुए भी अपने आप में मुक्त और संपूर्ण है। इस मुक्तक शैली में लिखे गये श्लोकों का प्रत्यक्ष प्रभाव पाठकों के हृदय पर पड़ता है जिसमें भाव और अभिव्यक्ति के साथ भाषा की त्रयी एक अनूठा प्रभाव छोड़ती है।

इस पुस्तक के लेखक ने विभिन्न पांडुलिपियों का सहारा लेकर 101 श्लोकों में रचित 'मृगांकशतकम्' को संपादित किया है। कविकंकण द्वारा लिखित यह 'मृगांकशतकम्' पाठकों का सम्मान प्राप्त करेगा ऐसा मुझे विश्वास है।

(अमर बहादुर सिंह)
प्रोफेसर एवं निदेशक
केंद्रीय हिंदी संस्थान,
आगरा।

प्राक्कथन

संस्कृत मुक्तक परम्परा में कविकंकण कृत 'मृगांकशतक' अपना विशेष स्थान रखता है। 'मृगांकशतक', 'कलंकशतक' अथवा 'शृंगारशतक' के नाम से पण्डित समाज में विख्यात है। यह अमरूशतक तथा आर्यासप्तशती की श्रेणी का मुक्तक काव्य है। इसकी पांडुलिपि श्री रणवीर संस्कृत अनुसंधान पुस्तकालय, रघुनाथ मन्दिर जम्मू से प्राप्त हुई थी। पांडुलिपि में अनेक अशुद्धियां थीं। अपने गुरुजनों स्व० डॉ० शम्भूनाथ शर्मा तथा डॉ० रामप्रताप जी से प्रेरित होकर मैंने भी इसका सम्पादन कार्य करने की ठान ली। 1978 में डॉ० वी० राघवन ने 'मृगांकशतक' की तंजौर तथा मद्रास पांडुलिपियों के आधार पर इसका सम्पादन 'मलयमरुत' चतुर्थ स्पन्द में किया था। अलवर की पांडुलिपि तो सहज ही प्राप्त हो गई। परन्तु तंजौर तथा मद्रास की पांडुलिपियाँ प्राप्त करने में कटु अनुभव हुआ। सभी पांडु-लिपियाँ देवनागरी में ही थीं। इसलिए पाठलोचन में अधिक असुविधा नहीं हुई।

प्रस्तुत आलोचनात्मक संस्करण के लिए जम्मू की पांडुलिपि को ही आधार बनाया गया है। अशुद्ध पाठों का यथासम्भव संकेत करने का प्रयास किया गया है।

पाठशोधन तथा अर्थनिर्धारण में गुरुजनों का मार्गदर्शन सदैव सुलभ रहा। जिसके परिणामस्वरूप 'मृगांकशतकम्' का सम्पादन एवं प्रकाशन सम्भव हुआ है। मात्र शाब्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करना मेरे वश की बात नहीं अतः शब्दों से नहीं अन्तस् की मूक श्रद्धा एवं प्रणाम ही अर्पित है।

केंद्रीय हिंदी संस्थान के निदेशक प्रो० अमर बहादुर सिंह जी के प्रति आभार व्यक्त न करना मेरी धृष्टता होगी, जिन्होंने 'मृगांकशतकम्' को आद्योपान्त पढ़कर इसकी भूमिका लिखने की कृपा की है।

अन्त में पूज्य पिताश्री तथा पूज्या माताश्री को भी नमन् निवेदित किए विना नहीं रह सकता जिनके आर्शीवाद से ही 'मृगांकशतकम्' इस रूप में प्रस्तुत कर पाया हूँ। आशा है मेरा यह प्रयत्न विद्वानों एवं सुधी पाठकों से यथोचित स्वीकृति प्राप्त कर सकेगा।

—भारत भूषण शर्मा

कविकंकण

कविकंकण का परिचय संग्रह-ग्रंथों में उद्धृत पद्यों से ही प्राप्त होता है। इन्होंने मृगांकशतक के अंतिम पद्य में अपने नाम तथा रचना का उल्लेख किया है।

इति कविकंकणभणितं
शतकं तनुतां मृगांकस्य।
विदुषो रुचिमचिरादिव
ककुभामुदयो मृगांकस्य ।।101।।

'सुभाषितावली' की भूमिका में डॉ० पीटरसन का कथन है कि कविकंकण का एक पद्य आचार्य मम्मट के काव्यप्रकाश पर राजानक रत्नकंठ द्वारा की गई 'सारसमुच्चय' नामक टीका में उद्धृत हुआ है।[1] इसी आधार पर एम० कृष्णमाचार्य राजानक रत्नकंठ को 17वीं शती उत्तरार्ध में कश्मीर में विद्यमान मानते हैं।[2]

1625 और 1650 के मध्य भाग में लक्ष्मणभट्ट अंकोलकर द्वारा निर्मित सुन्दर सूक्तियों का संग्रह "पद्यरचना" में कविकंकण का हेमन्त ऋतु संबंधी एक पद्य उद्धृत हुआ है।[3] 17वीं शताब्दी में ही जगज्जीवन के पुत्र वेणीदत्त द्वारा 'पद्यवेणी' में 115 मध्ययुगीन संस्कृत कवियों के पद्यों का संकलन हुआ है। इसमें कविकंकण के नाम से 13 पद्य संग्रहीत हैं। इन 13 में से 5 पद्य 'मृगांकशतक' में उपलब्ध हैं।[4]

---

1. सुभाषितावली—भूमिका, पृ०, 14
2. History of Classical Sanskrit Literature, p. 406
3. काव्यमाला, ग्रंथ संख्या 89, बंबई, प०र० 13/12
4. (1) रजनी काचन रमणी
   शशधरमुखमंडले तस्याः।
   रसलंपटमलिकलभं
   कमपि कलंक समाकलये ।। पद्यवेणी 5/584, मृ०श० 76

   (2) स्मरविशिखानिह सविषान्
   कर्तुं रजनीशसंपुटे रजनी।
   कलयति कलंकगरलं
   तदिमे सम्मूर्च्छयन्ति जनान् ।। वही 5/585, वही 97

'पद्यवेणी' की भूमिका में डॉ० जितेन्द्र विमल चौधरी ने आशामित्र को कविकंकण का पिता स्वीकार किया है ।[1]

14वीं शताब्दी में कश्मीरी कवि वल्लभदेव ने 'सुभाषितावली' का संकलन किया। इसमें मध्ययुगीन कश्मीर के संस्कृत कवियों की रचनाओं से पद्य उद्धृत किए गये हैं । कविकंकण के नाम से भी एक पद्य इसमें संकलित हुआ है ।[2]

दक्षिण भारतीय राजा हमीर के पुत्र अल्लराज ने 'रसरत्नप्रदीपिका' की रचना की थी । यह लक्षण ग्रंथ 15वीं शताब्दी का है । यह रचना मुख्यतः धनंजय के 'दशरूपक' पर आधारित है । विविध रसों के स्थायीभाव, व्यभिचारीभाव तथा नायिका के लीला आदि गुणों के उदाहरण स्वरूप कविकंकण के 9 पद्य इसमें उद्धृत हैं ।[3]

मध्ययुगीन संस्कृत कवियों का एक अन्य प्रख्यात संग्रह ग्रन्थ 'सदुक्तिकर्णामृत' है । इसका संकलन बंगाल के प्रसिद्ध राजा लक्ष्मणसेन के धर्माध्यक्ष वटुदास के पुत्र श्रीधरदास ने सन् 1205 ई० में किया था । इसमें भी कविकंकण के दो पद्य संग्रहीत हुए हैं ।[4] इस प्रकार कविकंकण के पद्यों का संकलन 13वीं शताब्दी पूर्वार्ध से 17वीं शताब्दी के उत्तरार्ध पर्यन्त होता रहा है । इसलिए ये 13वीं सदी से पूर्ववर्ती रहे होंगे । इनकी ख्याति में भी कुछ समय अवश्य ही लगा होगा, अतः उक्त प्रमाणों के आधार पर कविकंकण के समय की प्राचीनतम सीमा 1150 ई० के लगभग निश्चित कर सकते हैं ।

---

(3) अनुरागादभिसरतो
लंघितजलधेः कलाधिनाथस्य ।
रजनीमुखचुम्बनतः
शिथिलितमलकं कलंकमाकलये ।। वही 5/585, वही 80

(4) स्मरधीवेरेण विततं
जगति मनोमीनमाहर्तुम् ।
शशधरसरसि गभीरे
जालं कलये कलंकममुम् ।। वही 5/587, वही 43

(5) नभसि सरसि संचरतः
शशधरविम्बैकहंसस्य ।
चुंचुपुटीसम्पुटिता
शैवलवल्ली कलंककपटेन ।। वही 5/588, वही 28

1. पद्यवेणी, भूमिका पृ० 96
2. सुभाषितावली, पृ० 1085
3. रा०न० दांडेकर द्वारा भारतीय विद्यासीरीज नं० 8
4. डॉ० सुरेशचन्द्र बैनर्जी द्वारा कलकत्ता में सम्पादित ।

डा० पीटरसन महोदय के अनुसार 'राजतरंगिणी' में वर्णित 'कंकणवर्ष' ही कवि कंकण हैं, जिनके नाम पर 'कंकणपुर' (वर्तमान कंगन) नामक नगर बसाया गया था।[1] इस आधार पर इनका समय बहुत और पहले निश्चित किया जा सकता है।

डा० नागराजन के अनुसार 'Kanaka is the next Kashmirian Royal poet of eminence. He is more popularly known as Kankana or Kankanavarsa. He may be identical with king Ksemagupta. surnamed Kankanvarsa, who ruled in Kashmir from 958 to 968 A D. according to Kalhana, so his date may be placed in the 2nd half of the 10th century A.D.'[2]

क्षेमगुप्त का कंकणवर्ष अथवा कंकण नाम 'सारसमुच्चय' तथा 'सदुक्तिकर्णामृत' में संकलित कंकण अर्थात सुवर्ण सम्बन्धी पद्यों के आधार पर पड़ा होगा। क्षेमगुप्त के पिता पर्वगुप्त थे[3]। किन्तु डा० चौधरी ने इन्हें कविकंकण का पिता नहीं माना है।

कल्हण कृत 'राजतरंगिणी' के अनुसार क्षेमगुप्त एक विलासी तथा दुराचारी राजा था। उसकी राज्यपरिषद सदैव धूर्तों से भरी रहती थी, वे धूर्त राजा को अपने संकेतों पर नाच नचाते थे। अर्थात् राजा उनकी कठपुतली बना हुआ था। "आप कंकणवर्षी हैं" ऐसा अनेकशः कहने से धूर्तों की बातों से प्रसन्न होकर वह अपने कंकणों की वर्षा कर देता था, जिन्हें वे धूर्त लूट लिया करते थे, इस प्रकार से राजा क्षेमगुप्त कंकणवर्ष के नाम से विख्यात हुआ था।[4] यदि राजा क्षेमगुप्त ही कविकंकण हैं तो कल्हण जैसे इतिहासकार द्वारा उसकी रचनाओं का राजतरंगिणी में उल्लेख सम्भावित था। उन्होंने अपने से पूर्ववर्ती तथा समकालीन कवियों तथा उनकी कृतियों का राजतरंगिणी में वर्णन किया है। कल्हण ने क्षेमगुप्त का उल्लेख राजा के रूप में किया है, कवि के रूप में नहीं।

डा० राघवन के अनुसार बंगाल में कविकंकण एक उपाधि थी, जिसे अनेक कवियों ने प्राप्त किया था। इन्होंने New Catalogus catalogorum में कविकंकण, कविकंकण चक्रवर्ती, आचार्य कंकण आदि की रचनाओं की पृथक्-पृथक् रूप से चर्चा की है, परंतु कविकंकण के नाम से 'मृगांकशतक' तथा 'कारुण्यलहरीस्तव', दो कृतियों का एवं विविध संग्रह ग्रन्थों में इनके नाम उदधृत पद्यों का वर्णन किया है।[5]

---

1. 'He (i. e. Kankana) may be Kankanavarsa from whom the city Kankana took its name' Introduction to Subhashitavli of Vallabhdev by Dr. Peterson, p. 14
2. Contribution of Kashmir to Sanskrit Literature p, 292
3. कल्हण कृत राजतरंगिणी 5/160
4. वही 6/150-161
5. New Catalogus catalogrum Vol. III, page 221

यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है कि संग्रह ग्रन्थों में उद्घृत पद्यों के रचयिता मृगांकशतककार कविकंकण हैं या कोई अन्य। मृगांकशतककार कविकंकण ही उन पद्यों के रचयिता हैं तो इनके समय की निम्नतम सीमा 1150 ई0 के लगभग निर्धारित करने में कोई बाधा नहीं है, अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि कविकंकण कंकणवर्षी राजा क्षेमगुप्त से भिन्न हैं। इन दोनों के काल में भी भिन्नता है।

कारुण्यलहरीस्तव

प्रो० हरप्रसाद शास्त्री के संस्कृत पाण्डुलिपियों के संग्रह में 'कारुण्यजहरीस्तव' की पाण्डुलिपि का उल्लेख मिलता है। 'रायल एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल' में भी इसकी एक पाण्डुलिपि सुरक्षित है। यह काव्य भगवती पार्वती की स्तुति में रचा गया है। यह इसकी पुष्पिका से ज्ञात होता है।

"शंकरीचरणकिंकरी भवतां कविकंकणेन कृतं कारुण्यलहरीस्तवः।
विषयस्तोत्र व्याजेन भगवत्याः रूपगुणमाहात्मया विवर्णनम्॥"[1]

'मृगांकशतक'

मृगांकशतक, कलंकशतक अथवा शृंगारशतक के नाम से भी विद्वानों में विख्यात है।[2] इसकी रचना कविकंकण ने मुक्तक आर्या छन्दों में की है। मृगांक अर्थात् चन्द्रमा, कामी जनों के हृदय में प्रेम भावना को जागृत करता है तथा विरहियों के चित को दग्ध करता है, कवियों के लिए आदर्श उपमान है। उसके संबंध में पुराणों में तथा लोक में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। उसी चन्द्रमा के कलंक के विषय में कविकंकण ने एक सौ कल्पनाएँ की हैं।

'मृगांकशतक' में इनके द्वारा की गई कल्पनाएँ किसी अन्य कवि की उच्छिष्ट नहीं हैं। वे मौलिक एवं नवीन हैं। कल्पनाओं का संयत रूप होने से यह स्वाभाविक ही प्रतीत होती हैं।

भाषा शैली

'मृगांकशतक' की मुक्तक शैली वास्तव में क्षणिक भावावेश में प्रसूत भावों को बांधने के लिए बेजोड़ है। इसका कोमल कलेवर भाषा के बोझिल आडंबरों से रहित है। इसमें उमड़ते हुए भावों का प्रवाह है, जो नवनवोन्मेश एवं चमत्कारपूर्ण कल्पनाओं का सागर है। मृगांकशतक की भाषा, भाव और वस्तु का संकेत प्रत्यक्ष शैली में ही करती है। कम से कम शब्दों में भाव की पूर्ण अभिव्यक्ति कर हृदय को रसाप्लावित कर देना ही इसकी प्रमुख विशेषता है।

घर में आए हुए अतिथि का स्वागत सत्कार किस विधि से किया जाए, इसका प्रतिपादन कविकंकण ने निम्नलिखित शब्दों में किया है।

---

1. Notice of Sanskrit Manuscripts Vol. X
2. New Catalogus Catalogorum Vol. III, p. 221 & 226

दूरादगतवत्या
सपदि रजन्याः कलंककपटेन ।
प्राची हिमकरभाजन
निहितलवंगान्युपायनीकुरुते ॥ 56 ॥

अतिथि को आसनादि प्रस्तुत करने के पश्चात् पान सुपारी आदि प्रदान करने की प्रथा भारत में वैदिक काल से चली आ रही है। इसके पश्चात्-कुछ मिष्ठान्न अर्थात् मिश्री आदि दी जाती हैं। तदनन्तर दधि आदि दिया जाता है। जैसा कि इन्होंने विजिगीषु कामदेव को दिया है।

विजिगीषोः कुसुमेषो-
र्विधुमयदधिभाजनं रजनी ।
सहसा नयति पुरस्ता-
दुपचितमंतः कलंकदूर्वाभिः ॥ 58 ॥

रात्रि आंतरिक कलंक रूपी दूर्वा से युक्त चन्द्रमा रूपी दही का पात्र कामदेव को प्रस्तुत करती है।

कविकंकण की धार्मिक कृत्यों में भी पूर्ण आस्था थी। मंगलाचरण में कवि ने तीनों भुवनों को जीतने वाले कामदेव से गणेश की विल्वदलों से पूजा करवाई है, तदनंतर उसकी विजय यात्रा को मंगलमय बनाने की कामना से उसके अभिषेक हेतु मंगल कलश लेकर उपस्थित है।

मदनस्य भुवनजयिनः
शशधरकलशेऽभिषेचनायेदम् ।
निहितं हरिताम्रदलं
कलयति शंकां कलंकस्य ॥ 17 ॥

तीनों भुवनों को जीतने के बाद जब कामदेव वापिस लौटे हैं तो रजनी नक्षत्र पुष्प रूपी मार्ग पर चन्द्रमा रूपी थाली में कलंक रूपी धूप, दीप आदि से कामदेव की आरती उतारती है।

अधुना पदमनुधाता
स्मर इह विजयी महाराजः ।
उडुकुसुमे पथि रजनी
शशिनि शरावेऽङ्कधूपमावहति ॥ 78 ॥

भगवत्भजन में इनकी पूर्ण निष्ठा थी एवं विश्वास था। प्रातः नदी स्नान के पश्चात् ब्राह्मण, विष्णु-चरणों में तुलसी दल आदि को अर्पित करते हैं।

द्विजपतिरुदयन् विमले
मंदाकिन्या महाम्भसि स्नातः ।

तुलसीदलमाकलयति
विष्णुपदादंकदम्भेन ।। 30 ।।

उदय होता हुआ द्विजरूपी चन्द्रमा मंदाकिनी के जल में स्नान करने के पश्चात विष्णु-चरणों से (आकाश से) तुलसीदल को कलंक के बहाने से धारणा करता है। पति कामदेव की मृत्यु के उपरांत रति स्वयं तर्पण एवं पिंडदान आदि क्रियाओं को सम्पन्न करती है।

तर्पयितुं पतिमृतैः
पुलिनतटे गगनगंगायाः ।
हिमकरराजतशुक्तौ
वहति रतिः किल कलंकतिलपटलम् ।। 59 ।।

रति आकाश के रेतीले तट पर पति कामदेव के लिए अमृत से तर्पण करने के लिए चन्द्रमा रूपी चाँदी से निर्मित चमकते हुए कलंक रूपी तिल पटल को धारण करती है।

गगने नलिनीपत्रे
सद्यः प्रेताय कुसुमचापाय ।
रतिरोदनमयपिंडं
वितरति चन्द्रं कलंकमाषान्नम् ।। 60 ।।

रति शीघ्र ही स्वर्गवासी हुए अपने पति मन्मथ का आकाश रूपी नलिनी पत्र पर माषान्न युक्त ओदनमय पिंड को कलंक युक्त शशि के रूप में देती है।

भर्तरि सवितरि गतवति
पायसपिंडं सुधाकरं प्राची ।
व्यरचयदम्बरकुशभुवि
चलति कलंकस्तदंतरे काकः ।। 61 ।।

पति सूर्य के चले जाने पर पूर्व दिशा चन्द्रमा रूपी क्षीर पिंड को बनाती है और उसके मध्य में कुशा रूपी कलंक भूमि पर हिलता हुआ दिखाई देता है।

पितुरङ्के विलुठन्तीं
रेवामेवांकदम्भतः शशिनः ।
कलये दर्शनमात्रा-
दुपरति दुरितानि या हरति ।। 39 ।।

रेवा अर्थात् नर्मदा नदी चन्द्रमा से उत्पन्न हुई है, जिसके दर्शन मात्र से पापों का नाश हो जाता है।

इन वर्णनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कविकंकण भारतीय संस्कृति एवं परंपराओं के प्रेमी एवं प्रस्तौता रहे हैं। 'मृगांकशतक' पाठक की उत्सुकता को बनाए रखने में पूर्णरूपेण सफल है। इसके वर्णनों में माधुर्य तथा पद-लालित्य विद्यमान है। पदों को पढ़ने से पाठक को स्वतः ही अर्थाभिव्यक्ति हो जाती है तथा रसानुभूति होने लगती है।

छंदोऽलंकार

कविकंकण ने 'मृगांकशतक' की रचना आर्या छंद में की है। इनकी कविता बड़ी सरल एवं मनोहारिणी है। इसमें अलंकारों की छटा दर्शनीय है। इन्होंने स्थान-स्थान पर अनुप्रास, श्लेष, उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का सुंदर संयोजन किया है।

रस

कविकंकण ने अपनी विद्वता के कारण काव्य के किसी भी अंग को अछूता नहीं छोड़ा है। रस काव्य की आत्मा है, जिसके निरूपण में कवि ने 'मृगांकशतक' में अपनी कुशलता प्रदर्शित की है। 'मृगांकशतक' पूर्णतया रसराज श्रृंगार से रंजित है, जिससे इनकी श्रृंगारिक प्रवृत्ति का ज्ञान होता है। 'साहित्यदर्पण' में श्रृंगाररस का श्याम वर्ण बताया गया है। (स्थायीभावो रतिः श्यामवर्णोऽयं विष्णुदेवता) 6/186 कविकंकण ने श्याम वर्ण श्रृंगार का चंद्र कलंक के रूप में उत्प्रेक्षण किया है—

मंडलमखंडमिंदो—
रचलं कैलासमेव कलयेऽहम्।
तत्र कलंकव्याजाद्
विरलश्रृंगारनिर्झरः स्फुरति" ॥ 54 ॥

आचार्यों ने श्रृंगार रस के मुख्यतः संयोग और वियोग दो भेद किए हैं। इन दोनों ही भेदों का चित्रण कवि ने बड़ी कुशलता से किया है।

नायिका देर से आए हुए अपने कांत को रिझाने के लिए अपना साज-श्रृंगार करती है। अपने चाँद से मुखड़े पर काजल का चिन्ह बना देती है ताकि उसके सौंदर्य को किसी की नजर न लग जाए। इसी भाव को कवि ने 'मृगांकशतक' में चित्रित करने का प्रयास किया है।

उद्वर्त्य वदनमिन्दुं
कुंकुमपंकेन यामिनी रुचिरम्।
कलये कलंकदम्भा—
न्मृगमदतिलकं निवेशयति ॥ 8 ॥

नायिका पर आसक्त होने के पश्चात् नायक प्रेम प्रदर्शित करने के लिए तदनुरूप चेष्टाएँ करता है। नायिका के नयनों का चुंबन करने पर काजल का चिन्ह नायक के ओठों पर लग जाता है।

आकृष्य तिमिरचिकुरं
रजनीनयनं कलाधिनाथोऽयम् ।
यदचुम्बदम्भरान्ते
कज्जलकलनां तदंकतां वहति ।। 9 ।।

अभिसार के द्वारा जब प्रेमी युगलका एकान्त में मिलन होता है तो कविकंकण राकेश और राका का स्मरण करते हैं ।

अनुरागादभिसरतो
लंधितजलधेः कलाधिनाथस्य ।
रजनीमुखचुंबनतः
शिथिलितमलकं कलंकमाकलये ।। 80 ।।

इन चेष्टाओं के पश्चात जब नायक नायिका के हृदय में काम-भावना उत्कट होती है तो नायक के रति में प्रवृत होने पर नायिका का मुखलज्जावश झुक जाता है ।

श्लथयति कलाधिनाथे
तिमिरिनिचोलं करेण रजनीयम् ।
सपदि-ह्रिया-हृदि-लीना
लांछनलक्ष्मीमुरीकुरुते ।। 32 ।।

संयोग के अनंतर वियोग होने पर प्रेमी युगल विरह वेदना से व्याकुल रहते हैं, इनके मुखमंडल की आभा क्षीण हो जाती है ।

न किल कलंकं कलये
नभसि भ्रमतः कलाधिनायस्य ।
ताराविरहहुताशन—
हेतुधूमांकुरः स्फुरति ।। 19 ।।

विरह वेदना की अधिकता से प्रेमी को शीतलता प्रदान करने के लिए नलिनी पत्रों आदि से उपचार किया जाता है ।

दिनकरकरपरितापा—
द्वक्षसि निहितं तुषारकिरणेन ।
नलिनीदलमतिललित
कलयति शंकां कलंकस्य ।। 24 ।।

यह प्रसिद्ध ही है कि रात्रि के समय चन्द्रमा के कारण चकवा और चकवी का परस्पर मिलन नहीं हो पाता । कवि का विचार है कि यह चन्द्रमा का कलंक नहीं है, अपितु चकोरियों की विरहावस्था का द्योतक नीला वर्ण है—

वेदयितुं विरहदशां
गतमिव चेतश्चिराच्चकोरीणाम् ।
शशिनि शुचा मलिनीकृत—
मभिनीलं किमपि लक्ष्मैतत् ।। 79 ।।

अन्य ग्रंथों में कविककंण के उद्धृत पद्य

1. काव्यमाला–89–निर्णसागर प्रेस वंबई–1908.

अंकोलकर श्री लक्ष्मण भट्ट द्वारा निर्मित 'पद्यरचना' में हेमन्त वर्णन के प्रसंग में निम्नलिखित पद्य कविककंण के नाम से उद्धृत है :—

1.1 "लज्जा प्रौढ मृगीदृशामिव नवस्त्रीणां रतेच्छा इव
स्वैरिण्या नियमा इव स्मितरुचः कुल्यांगनानामिव ।
दम्पत्योः कलहा इव प्रणयिता वारांगनानामिव
प्रादुर्भूय तिरोभवन्ति सहसा हैमन्तिकावासराः ॥" 13/12

2. भाण्डारकर प्राच्यशोध संस्थान पूना से श्री रघुनाथ दामोदर करमेकर द्वारा प्रकाशित वल्लभदेव कृत 'सुभाषितावली' में कविककंण का निम्नलिखित पद्य उद्धृत है :—

2.1 कण्ठगृहे शिथिलतां गमिते कथंच्चित्
यो मन्यते मरणमेव सुखाभ्युपायम् ।
गच्छन्स एष न वलाद्विधृतो युवाभ्याः
मित्युज्झिते भुजलते वलयैरिवास्याः ॥ 1085

3. प्राच्यवाणी मन्दिर कलकत्ता से 1944 ई० में डा० जितेन्द्र विमल चौधरी द्वारा सम्पादित वेणीदत्त विरचित 'पद्यवेणी' में कविककंण के नाम से लगभग 14 पद्य उद्धृत किए गए हैं, जिनमें 5 पद्य 'मृगांकशतक' के हैं । पद्यवेणी में ही कविकंकण के पिता का पद्य भी उद्धृत किया गया है । डा० चौधरी के अनुसार कविककंण के पिता का नाम आशामित्र है :—

3.1 शिला सूतिः स्थाणु-स्थितिरपि विशाखांकुरवती
कथंचिन्नद्यापि क्वचन सुमनोभिः परिचिता
चिरंसिक्ता भक्तया पुनरियमपर्णव लतिकां
न विघ्नः किं रूपं कियदवधि किं धारयति ॥ 1/43. (आशा मित्र)

3.2 कुल स्वाधिष्ठानरुचिमणिपूरं च शनकै
रुदस्यायास्थान हतमथ विशुदं पक्ष्मपि ।
सदाज्ञामुल्लंधय प्रमद रभसादीशमहिले
नुमस्त्वां निष्पीतीं पर-पुरुष लब्धाकुलवधूम् ॥ 1/44

3.3 सद्वृत्तौ सचिवौ कुचाविति पुरस्कृत्य स्मर सुभ्रवो
लावण्य-द्रविणं न्यधतनिभृतं नाभीगभीरोदरे
एतावुन्नति सम्भ्रमाल्लघुरसं स्वीकृत्य सर्वं नु तत्
काठिन्यं भजतः क्रमादनुचरीभूतो यथा स प्रभुः ।। 3/213.

3.4 बद्धमण्डलमुरो भविताऽस्या मध्यभूर्वलिभिराक्रमणीय
ख्यातुमेतदिव कर्णमुपैतुं भीयत नयनर्योवावसायः ।। 3/236

3.5 उन्मीलत्पुलकं विलोलदलकं स्विद्यत्कपोलस्थलं
भ्राम्यत् कुण्डलमाकुलाकुल-लसत्सीत्कारमुधत्कारा ।
किंचित् कुञ्चदुदञ्चित भ्रुविलसच्चोलं गलन्नीविकं
स्यादभूयोऽपि कदा मदाकुलदृशोविम्बाधारास्वादनम् ।। 4/282

3.6 मुक्ता पतन्ति भूमो वाला: कलयन्ति केवलं मुक्तिम्
चुम्वत्यम्बरमर्वानि विपरीते किं न विपरीतम् ।। 5/470

3.7 प्राचीमामृशतः करेणरजनी वक्त्रं चिरं चुम्वतो
रागार्द्रामपरामुरीकृतवतः सन्ध्यां समालिंगतः ।
स्मेरां कैरविणीं विधाय वहुशो वद्धाननां पद्मिनीं
वालस्यापि कलानिधेः स्मरकला पाण्डित्यमुज्जृम्भते ।। 5/572

'मृगांकशतक' से उद्घृत :—

3.8 रजनी काचन रमणी शशधरमुखमण्डले तस्याः ।
रसलम्पटमलिकलभं कमपि कलंकं समाकलये ।। 5/584 मृ. शः 76.

3.9 स्मरविशिखानिह सविषान्
कर्तुं रजनीशसम्पुटे रजनी ।
कलयति कलंकगरलं
तदिमे सम्मूर्च्छयन्ति जनान् ।। मृ. श. 97 5/585

3.10 अनुरागादभिसरतो लंघितजलधेः कलाधिनाथस्य ।
रजनी मुखचुम्वनतः शिथिलितमलकं कलंकमाकलये ।। 5/586 मृ. श. 80

3.11 स्मरधीवरेण विततं जगति मनोमीनमाहर्तुम् ।
शशधरसरसि गंभीरे जालं कलये कलंकममुम् ।। 5/587 मृ. श. 43

3.12 नभसि सरसि सञ्चरतः शशधरविम्बैकहंसस्य ।
चुञ्चुपुटीसम्पुटिता शैवलवल्ली कलंककपटेन ।। 5/588 मृ. श. 28

3.13 तिर्यक्तां व्रजतु प्रतारयतु वा-धर्मं क्रिया कोविदं
हन्तु स्वां जननी पिवत्वपि सुरां शुद्धां वधूं मुञ्चतु ।

वेदामिन्दतु वा हिनस्तु जनतां किं वाऽन्या चिन्तया
लक्ष्मीर्यस्य गृहे स एव भजति प्रायो जगतपूज्यताम् ।। 6/752

3.14 कृशः प्राप्तौ मित्रं तत उदयमेत्यैव कुटिलः
कलानाथस्तस्याभिमुखमुदयन् मण्डलधरः ।
तथा भूतो भूयस्तदनुसरणः
शशी सिद्धिः कुत्र स्फुरति वदमित्रद्रुहिजने ।। 6/761.

4. 1945 में भारतीय विद्या सीरीज नं० 8 में डा० रा०न० दाण्डेकर द्वारा प्रकाशित अल्लराज निर्मित 'रसरत्नप्रदीपिका' में कविककंण के निम्नलिखित पद्य उद्धृत किए गए हैं :—

4.1 अव्यक्तवर्णानि मनोहराणि निरर्थकानि क्षणविस्मृतानि ।
ध्रुवं शिशूनासमज्जसानि वचांसि हासं जनयति प्रसारम् ।। 2/13

4.2 आकर्ण्यसंगरमहार्णवचेष्टितानि
गोष्ठीरसाहृतजनस्य मनोविकारः ।
अंगे करोति पुलकं नयने विकाशं
कान्ति च कमपि मुखे स्फुरणं च वाह्वोः ।। 2/19

5.3 आकर्ण्य गर्जितं घोरं जलदानां समागमे ।
वाला विद्युतलज्जेव सत्रासं श्लिष्यति प्रियम् ।। 4/62

4.4 अकरोतृणमिव जीवं पूर्वं जीमूतवाहनः कृपया ।
तृणमपि जीवं कुरुते लोकः सत्वात्परिभ्रष्टः ।। 5/59

4.5 लीला पकंजमादधति रुचिरे गम्भीरनाभ्यन्तरे
कस्तूरिद्रवचर्चितं वपुरपि श्यामीकरेत्यादरात् ।
तांटकं च करे करोति कुतुकाच्चक्रानुसारं तदा
लक्ष्मीः क्रीडति पीतवस्त्रकलितास्मित्वा सखीनां पुरः ।। 6/4

4.6 हित्वा नर्मकथासखीविरचितां क्षिप्त्वा दृशं व्यायता
मेणाक्ष्य सदृसा विलुण्ठनपदं किंचितपुरः सारितम् ।
उत्थापेक्षण पल्लवेण शनैकर्मां च स्मृशन्तया तथा
किंचिद्वछिन्न देहभंग सुभगं तन्व्या ममाग्रे स्थितम् ।। 6/7

4.7 माल्यं स्कन्ध विलम्बितं च निहितं केशे दृशोरंजनं
स्थूलप्रांतविनिर्मितं च हृदये हरस्तु तियग्धृतः ।
कूर्पासस्य च वीटिकांगुलिमुखेनार्योजिता यद्यपि
प्रायोऽस्यास्तदपि स्फुरत्यभिनवा शोभैवलोकोत्तरा ।। 6/9

4.8 आकुंच्याग्रं नखविलिखने पश्यति भ्रुविभंगया
गाढ़ाश्लेषे वदति च ह हा मुंच मुंचेत वाचम् ।

केशाकृष्टावरुणनयनाताडने साश्रुनेत्रा
नानाभवं श्रयतितरुणी नाटके मन्मथस्य ।। 6/17

4.9 नायस्तासि महीभृता सुरतरोः काण्डेन नोत्पीडिता
नैवोच्चैःश्रवसः खुरेण कलिता नोवात्रिषेणार्दिता ।
पायाद्विश्वमिदं हरिः कुतुकिनी लज्जावनम्राननां
लक्ष्मीमंकगतां विधाय मधुरं कर्णोपकण्ठेवदन् ।। 5/19

5. डा. सुरेशचन्द्र बैनर्जी द्वारा फर्मा. के. एल. मुखोपाध्याय कलकत्ता से 1965 में सम्पादित श्रीधरदास विरचित 'सदुक्तिकर्णामृत' में भी कविकंकण के दो पद्य उपलब्ध होते हैं :—

5.1 रेवा तटकेलिलम्पटवपुः शोकं वृथा मा वृथा
कुम्भिन् कुम्भसमाहृतं पिव पयो वन्ध्येव विन्ध्यस्मृति
ताभिकानन कुंजरीभिरमितो दैवेन दूरीकृतो
वेल्लत्पल्लवशल्लकी वनलता कुंजेषु ते विभ्रमः । 4.4.51

5.2 वीणा क्वाणत्वपोल्लासि लोलदंगुलिपल्लवः ।
भारत्याः पातु भूतानि पाणिर्लसित कंकण ।। 1.71.1

6. पण्डित रघुनाथ मनोहर कृत 'कविकौस्तुभ' में भी कविकंकण के नाम से एक पद्य दोष प्रसंग में उद्धृत हुआ है ।

6.1 स्वसंकेतप्रक्लृप्तार्थदोषः

"सिन्धु सूनुपतेर्मित्रं तस्यायुधपतिस्वयः ।
तस्य कन्यासखी स्वच्छं भाति ते कीर्तिमण्डलम् ।।

7. आचार्य मम्मट कृत 'काव्यप्रकाश' पर राजानक रत्नकण्ठ की सारसमुच्चय टीका में भी कविकंकण के नाम से पद्य उद्धृत है :—

7.1 "लीला पंकजमादधाति रुचिरे गम्भीरनाभ्यन्तरे
कस्तूरीद्रवचर्चितं वपुरपि श्यामीकरेत्यादरात् ।
तांटकं च करे करोति कुतुकाच्चक्रानुसारं तदा
लक्ष्मी क्रीडति पीतवस्त्रकलितास्मित्वासखीनां पुरः ।।

कविकंकण कृत मृगांकशतकम् की पाण्डुलिपियाँ एवं प्रकाशित सामग्री—

प्रस्तुत संस्करण के लिए निम्नलिखित पाण्डुलिपियों का उपयोग हुआ है :—

प्रथम पृष्ठ

श्रीलः श्रीमत्कल्लादिमलसदलवरे शस्सदाज्ञानुवर्ती जोसीगङ्गाधराख्यः प्रथितगुणगणः आम्रशालाधिनाथः तत्सूनुः पुस्तकोयं विविधबुधवरैः शोधयित्वा श्रमेण श्रीमत्सुशेषनेयं कृतबहु

यतनो रामगोपालशर्म्मा

॥मृगांकशतकः॥

जं नृपतिं श्रीररावीरसिंहं संतोषयन्मकलसिंहसंसः॥

राजोल्लरस्य प्रभुरगोहितस्य समीपभेतं शतकं चकार॥

आन्तिम पृष्ठ

एकोपान्निरकाशयद्भिमंडलं मुकुरो रजनी चिरेणाभिविडितनमालिन्यकलंकमाकलये॥९८॥तुहि नरकस्य कलंकं केरावचन्नुः॥कनीलिकां करयेयं पुरतः प्रतिकमलं सयदिन गोटे वली पनेलक्ष्मी॥९९॥विधुर्द्यितं डुलपिरंलांछनवरलं विधिर्नहंति भ्रसह चिरादिह नूतनं कमपि कुमारं स्मरं रजनी॥१००॥इतिकंर्डकरणभणितं शतकं तनुतं मृगांकस्य विंदुर्मोरुचिमचिरादिव कुभांसुदयोमृगांकस्मा॥३॥इति श्रीकविवं.व रणभणितं मृगांकशतकं समाप्तं॥ॐ॥ सं १९८१ पोषकृष्ण॥७॥

1. राजस्थान प्राच्य विद्याप्रतिष्ठान

शाखा अलवर

क्रमांक 2252

देवनागरी लिपि में कागज पर सुन्दर हस्तलेख में लिखी गई है। इसमें 11 पत्र हैं तथा उनका आकार 26″ × 12.5″ से.मी. है। प्रत्येक पृष्ठ पर 7 पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में 28 से 30 वर्ण हैं। पाण्डुलिपि के आरम्भ में टिप्पणी दी गई है कि सं 1948 चैत्र शुदी 14 को पीटरसन साहिब को वम्बई भेजी गई।

पुष्पिका :

इति श्री कविकंकणभणितं मृगांकशतकम् समाप्तम्

इति श्री मथुरा जी मध्ये सम्वत् 1912 मिती चैत्रशुदी

2. श्री रणवीर अनुसन्धान संस्कृत पुस्तकालय

रघुनाथ मन्दिर जम्मू :—

क्रमांक 4047

सुन्दर हस्तलेख से देवनागरी लिपि में कागज पर लिखी गई है। इसके 6 पत्र हैं जिनका आकार 36.5″ × 19″ से.मी. है। एक पत्र अनुपलब्ध है। प्रत्येक पृष्ठ में 10 पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में 38 से 40 तक वर्ण हैं। पांडुलिपि अच्छी दशा में और सम्पूर्ण है।

इस पाण्डुलिपि के आरम्भ में दो पद्य मिलते हैं, जिनमें से एक प्रति लिपिकार का ही लिखा है तथा दूसरा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा लिखा गया है। ये दोनों ही पद्य, छन्द और व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध हैं। प्रतिलिपिकार के पद्य से यह ज्ञात होता है कि इसकी प्रतिलिपि अलवर नरेश की पुस्तकशाला में रामगोपाल द्वारा की गई थी।

दूसरे पद्य से यह सिद्ध होता है कि अलवर नरेश मंगलसिंह ने जम्मू-कश्मीरधिपति श्री रणवीरसिंह को 'मृगांकशतक' की प्रति भेजी थी।

श्रीः लः श्री मंगलादिप्रलसदलवरे शास्त्रदाज्ञानुवर्ती
जोसी गंगाधराख्यः प्रथितगुणगणः शास्त्रशालाधिनाथः।
तत्पुत्रः पुस्तकौघं विविधबुधवरैः शोधयित्वा श्रमेण
श्रीमत्सु प्रेषितेयं कृतेयं वहुयतनो रामगोपालशर्मा ।।

जम्वूपति श्री रणवीरसिंह सन्तोषधन्मगंलसिंह संज्ञः।
राजोऽलवरस्य प्रभुणोहितस्य समीपमेतत् शतकं चकार।

पुष्पिका :

इति श्री कविकंकणभणितं 'मृगांकशतकं' समाप्तम् । सं० 1941 पौष कृष्ण

3. त.

तंजौर महाराजा शरफोजी सरस्वती महल पुस्तकालय, तंजौर

क्रमांक 3962

वर्नल कैटलाग न. 12356 पृष्ठ 164 के अनुसार कागज पर देवनागरी लिपि में लिखी गई है । इसके 13 पत्र हैं, जिनका आकार $7\frac{1}{2} \times 3\frac{1}{2}$ इंच हैं । प्रत्येक पृष्ठ पर 6 पंक्तियां हैं ।

पुष्पिका :

इति कविकलंकभणितं
शतकं तनुतां मृगांकस्य ।
विदूषां रुचिमचिरादिव
ककुभामुदयो मृगांकस्य ॥

इति कविकंकणभणितं मृगांकशतकं समाप्तम्
श्री कृष्णापर्णमस्तु । श्री : श्री नारायण ॥

4. म.

मद्रास शासकीय हस्तलिपि कोशागार ।
मद्रास

क्रमांक 11981

देवनागरी लिपि में कागज पर 6 पृष्ठों में लिखी गई है । इनका आकार $7\frac{5}{8} \times 5$ इंच हैं । प्रत्येक पृष्ठ पर 10 पंक्तियां हैं, जो जीर्ण-शीर्ण एवं प्राचीन अवस्था में ।

पुष्पिका :

इति श्री कविकंकण भणितं मृगांकशतकं समाप्तम्
श्री सिद्धि विनायकाय नमः नमः श्री गणपत्ये ।

5. Catalogue of the Sanskrit Mss. in the library of India office London Part VII.

क्रमांकं 2538 सी

गायकवाड़ द्वारा संग्रहीत 1781 ई० में देवनागरी लिपि में कागज पर लिखी गई है । इसके 6 पत्र हैं, जिनका आकार $10\frac{1}{4} \times 4\frac{1}{2}$ इंच हैं । प्रत्येक पृष्ठ में 10 पंक्तियां हैं, सुन्दर हस्तलेख ।

पुष्पिका :

इति श्री कविकंकण भणितं मृगांकशतकं समाप्तम् ।

पंज्राज जी श्री 5 दामोदर जी जीवत्पुत्र दुर्लभराम जी पठनार्थं लिखिदं मथुरानाथ सम्वतं 1838.

6. र.

मलपमरुत, चतुर्थ-स्पन्द

डा. वी राघवन

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान

नई दिल्ली

मार्च 1978

"मृगाङ्कशतकम्"

(कविकङ्कणभणितम्)

श्री गणेशायनमः

जेतुं त्रिभुवनमतनुः[1]
स्फटिकगणेशं तुषारकरविम्बे[2] ।
बिल्वदलैरचितवां
[3]स्तदिह कलङ्कं विशङ्कते लोकः[4] ॥ 1 ॥

कामदेव ने तीनों भुवनों को जीतने के लिए चन्द्रमण्डल में स्फटिक गणेश को बिल्वदलों से पूजा जिसमें लोग कलङ्क की शङ्का करते हैं।

शशिनि सुधामयसिन्धौ
स्वपिति हरिः किल कलङ्ककपटेन ।
अविरतमेव यदेत–
त्तनयो[5] मदनः पुरः स्फुरति ॥ 2 ॥

अमृतमय सागर रूपी चन्द्रमा में कलंक के व्याज से विष्णु शयन करते हैं। मानो कृष्ण वर्ण कामदेव निरन्तर चमक (फड़क) रहा है।

रजनीश–रजतभाजन[6]
मरकतमृत्युञ्जयः कलङ्कमिषात् ।
नभसि[7]नवाम्भसि निहितः
किमु जीवयितुं पतिं रत्याः[8] ॥ 3 ॥

रति ने मानो अपने पति कामदेव को जीवित करने के लिए चन्द्रमा रूपी चांदी के पात्र में मरकत मणि के मृत्युञ्जय को कलङ्क के बहाने से आकाश में मेघ रूपी नूतन जाल में स्थापित किया है।

---

1. अ., $अ_1$, म. मखिलं ।
2. अ. $अ_1$ म. बिम्बं ।
3. अ. सु इत्यधिकम् ।
4. अ. $अ_1$ म. (लोकः) नास्ति ।
5. अ. $अ_1$ तमयो (न) लुप्तः, म. लनयः ।
6. म. भाजने, एकामात्राधिका ।
7. त. भसित भवा ।
8. म. रक्तमिव ।

हरदग्ध[1] एव मदनः
सपदि निमग्नः सुधाकरे सरसि ।
मलिना[2] तदङ्गदीधिति[3]—
रुदयति कपटात्कलङ्कस्य ॥ 4 ॥

महादेव की नेत्राग्नि से जला हुआ कामदेव शीघ्र ही चन्द्रमा रूपी तालाब में डुबकी लगा रहा है। उसके अङ्गों की चमक भरी मलिनता मानो कलंक के छल से उदित हो रही है।

[4]अङ्के कलङ्कदम्भा[5]द्—
[6]गरुडमणिं वहति चन्द्रमाः कमपि ।
हरदृष्टिविषविदग्धं[7]
जीवयितुं कुसुमधन्वानम् ॥ 5 ॥

महादेव के नेत्रों की विषाग्नि से जले हुए कामदेव को जीवित करने के लिए चन्द्रमा कलङ्क के छल से अपनी गोद में किसी गरुड़मणि को धारण करता है।

कोपादिव[8] नवशशिना
कबलितमखिलं तमः पटलम्[9] ।
स्फुरितं तदेव हृदये[10]
कलयति शङ्कां कलङ्कस्य ॥ 6 ॥

मानो क्रोध से नवीन रजनीश ने समस्त अन्धकार को निगल लिया है और वही अन्धकार उसके हृदय में फड़कता हुआ कलंक की शंका को उत्पन्न कर रहा है।

विश्वं विजेतुम[11]चिरा—
[12]दङ्कमिषान्निजपुरःसरे शशिनि ।
कुसुमशरेण करेण
स्वय[13]मिह[14] मुद्रामसी[15] निहिता ॥ 7 ॥

---

1. अ. अ; दृग् पदमधिकम् ।
2. त, अधुना ।
3. म. अतत्तुटिः ।
4. त, अङ्क कलङ्क ।
5. अ. दम्भा ।
6. म. अतत्तुटिः ।
7. अ, अ; विषण्णं, म विषस्य ।
8. म. कोपोदिवाव ।
9. म. परस्य ।
10. म. हृदयम् ।
11. अ, अ; ने ।
12. म. एक ।
13. अ. $अ_1$ स्वह ।
14. म. इव ।
15. त. म. र. षी ।

शीघ्र ही संसार को अपने वश में करने के लिए कामदेव ने अपने हाथ से मुद्रा तथा पास की चन्द्रमा रूपी सफेद दवात में कलंक रूपी स्याही रखी है।

उद्व[1]र्त्य वदनमिन्दुं
[2]कुङ्कुमपङ्केन यामिनी रुचिरम्।
कलये कलङ्कदम्भा—
न्मृगमदतिलकं निवेशयति ॥ 8 ॥

रात्रि रूपी नायिका अपने सुन्दर मुख-चन्द्रमा को केसरादि से धोकर कलङ्क के वहाने से कस्तूरी का तिलक लगा रही है।

आकृष्य तिमिरचिकुरं
रजनीनयनं[3] कलाधिनाथोऽयम्।
यदचुम्वदम्वरान्ते
कज्जलकलनां[4] तदङ्कतां वदति[5] ॥ 9 ॥

इस शशि ने अन्धकार रूपी केशों को हटाकर रात्रि के नेत्र का जो चुम्बन किया तो उसके नेत्र के कज्जल का चिन्ह चन्द्रमा के मुख पर लगा और वही कलङ्क कहा जा रहा है।

शशिसम्पुटे कलङ्कं
सिद्धं शृङ्गा[6]रकज्जलं रजनी।
दृशि विनिवेश्य जनानां
मदनाद्वैतं प्रसाधयति ॥ 10 ॥

निशा ने शृङ्गार काजल को कलंक के रूप में चन्द्रमा रूपी डिब्बी में रखा है, जिसे लोगों की आँखों में लगा कर कामदेव के साथ एकीकरण कर रही है।

ओषधिपतिरङ्कमिषात्
कलयति शृङ्गारमञ्जरीबीजम्।
दृशि विशदेव यदेत—
न्मनसि[7] क्षेत्रेऽङ्कुरं वहति ॥ 11 ॥

---

1. म. उद्धृत।
2. $अ_1$—कुकुमपडकन।
3. म. यैनवं।
4. अ. $अ_1$ कलनं।
5. र. त. वहति, म. ददति।
6. म. भृङ्गार।
7. $अ_1$ मनसिज।

औषधीपति चन्द्रमा ने अपने कलंक के छल से शृंगार रूपी लता के बीज को धारण किया है, जो यह दृष्टि में प्रवेश करता हुआ मानो काम क्षेत्र में अंकुर को धारण कर रहा है।

शशिमण्डलालवालं
काचन शवरी[1] कलङ्ककपटेन।
अविरलमेव[2] कलाभिः
[3]कर्पूरैः पूरयन्तीयम् ॥ 12 ॥

कोई भीलनी नायिका कलंक के बहाने से चन्द्रमण्डल की क्यारियों को निरन्तर कलाओं रूपी कर्पूर से भर रही है।

ननु शर्वरीति शबरी
शशिकरिदशनैककर्णपूरेऽस्याः
मलिना कपोलकान्तिः
विलसति कपटात्कलङ्कस्य ॥ 13 ॥

रजनी रूपी भीलनी ने अपने कानों में हाथी दांत के कर्णपूर (कानों का आभूषण) पहने हैं। उस कर्णपूर में भीलनी के कपोलों की छाया दीख रही है जो चन्द्रमा का कलङ्क कहा जा रहा है।

तिमिरनिकरकरिकवलन—
कुमुदविकाशाट्टहा[4]समादधतीम्।
हिमकरहरिमधिरूढां[5]
कलये कालीं[6] कलङ्कममुम्[7] ॥ 14 ॥

अन्धकार समूह रूपी हाथी को निगलने से श्वेत कमलों के विकास रूपी अट्टहास को धारण करती हुई चन्द्रमण्डलरूप शेर पर आरूढ़ भगवती काली को कलङ्क ही समझता हूँ।

काचमयं किल च[8]षकं
सकलसुरैरमृतपानाय।

---

1. त. काचनकवली, अ. म. काञ्चन कदली।
2. म. एक।
3. अ. अ; तत् पदमधिकम्।
4. म. दृशा।
5. अ. $अ_1$ म सृष्टां।
6. अ. अ; कालांक।
7. अ. $अ_1$ कलंकणम्। म. कालां कलम्बक।
8. अ. चसकं $अ_1$ चस्रकं।

निहितममृतकरकुण्डे[1]
कलये कपटात्कलकमिषात्[2] ॥ 15 ॥

देवताओं ने अमृत पीने के लिए चन्द्रमा रूपी तश्तरी में शीशे का प्याला (चषक) रखा है जो चन्द्रमा का कलंक कहा जा रहा है।

अमृतमये सरसीन्दा—
वेकं नीलोत्पलं कलंक[3]मिषात्।
अहमहमिकया यस्मिन्
लोचनमधुपाः प्रधावन्ति ॥ 16 ॥

अमृतमय तालाव रूपी चन्द्रमा में कलंक के बहाने से एक नीलकमल है, जिस पर स्पर्धा से नेत्र रूपी भंवरे दौड़ रहे हैं।

मदनस्य भुवन[4]जयिनः
शशधरकलशेऽभिषेचनायेदम्।
[5]निहितं हरिताम्रदलं
कलयति शङ्कां कलंकस्य[6] ॥ 17 ॥

चन्द्रमा रूपी कलश में सारे विश्व को जीतने वाले कामदेव के अभिषेक के लिए निहित आम का हरा किसलय कलंक की शंका को उत्पन्न कर रहा है।

प्रणयादुरसि विनिहितः
शशिना जलदः[7] कलंककपटेन।
पितुरुदधेः समुदन्तं[8]
कथयिष्यति चिरमविदितमिति ॥ 18 ॥

चन्द्रमा द्वारा कलंक के व्याज से प्रेम के कारण वक्षस्थल पर रखा हुआ (जलद्) बादल का टुकड़ा अपने पिता सागर को चिरकाल से अविदित समाचार देगा।

(क्योंकि मेरा समाचार बहुत दिनों से पिता समुद्र को प्राप्त नहीं हुआ। मेघ जल रूप होकर पुनः समुद्र में आता है।)

---

1. म. अमृतकलंके। त. र. भरकुण्डे।
2. र. म. $अ_1$—स्य।
3. म. नीले स लोक।
4. अ. $अ_1$ शयिना।
5. अ. $अ_1$ सेहितं।
6. म. कन्जकस्य।
7. अ. $अ_1$ जलदत्।
8. त. उदन्तं "पितुरुदधेरुदयं एवम्" इति स्यात्।
र. स्वम् उदन्तं।

न[1] किल कलंकं कलये
नभसि भ्रमतः कलाधिनाथस्य ।
ताराविरहहु[2]ताशन—
हेतुर्धूमांकुरः स्फुरति ॥ 19 ॥

आकाश में घूमते हुए चन्द्रमा का कलंक रोहिणी नक्षत्र की विरह रूपी अग्नि के कारण उत्पन्न हुए धूमांकुर के रूप में फड़कता है ।

हिमकरबिम्बे[3] हिमवति
कुञ्जरकलभं कलंकमाकलये ।
उन्मूलयन्तम[4]बला—
हङ्कृतिक[5]दलीकुलं कुतुकात् ॥ 20 ॥

हिमालय रूपी चन्द्रमण्डल के बिम्ब में कलंक को करिशावक के रूप में मानता हूँ जो उत्सुकतावश अबलाओं के अहंकार को कदली समूह के रूप में उखाड़ रहा है ।

सपरिकरं कुसुमशर—
स्त्रिभुवनविजयाय निर्गतः सहसा ।
[6]दधती कलंककोकिल
शशिपञ्जरमनुसरति रजनी तम् ॥ 21 ॥

तीनों भुवनों को जीतने के लिए कटिबद्ध होकर अचानक निकला हुआ कामदेव कलंक को द्योतित करता है । रात रूपी कोयल उस चन्द्रमा रूपी पिंजरे का अनुसरण करती है ।

उडुमण्डलमय[7]मण्डं[8]
रजनीभुजङ्गीयमापतति[9] ।
जनयति शशिनि कलंकं[10]
कालव्यालं[11] समुल्लसति[12] ॥ 22 ॥

---

1. अ. न लुप्तः ।
2. अ₁ विरहडगताशन ।
3. त. विष, म. बिम्बैः ।
4. म. लन्त्य ।
5. म, हुइ, अ₁ ङ्ग ।
6. अ. अ₁ म वधती ।
7. म. मिभ, त. मिद, र. निभ ।
8. अ₁ मण्डल ।
9. त. र. आलिङ्गय, म. यमाण त्रुटिः ।
10. म. अ. अ₁ ङ्कः, त ङ्ग ।
11. म. अ₁ लः, अ ल ।
12. म. त्रसति ।

यह रात्रि सर्पिणी के रूप में तारामण्डल रूप अण्डे पर गिर रही है और चन्द्रमा में कलंक को पैदा कर रही है जो कालसर्प के रूप में चमक रहा है।

कर्णानिलचल[1]गलितो
गजपतिमदबिन्दुरिन्दु[2]बिम्बेऽस्मिन् ।
मदयन् मनांसि पुंसां
कलयति शङ्कां कलङ्कस्य ॥ 23 ॥

इस चन्द्रबिम्ब में कानों की वायु के चलने से गिरा हुआ गजराज ऐरावत के मदजल का बिन्दु लोगों के हृदयों को मस्त करता हुआ कलंक की शंका को उत्पन्न कर रहा है।

दिनकरकरपरितापा—
द्वक्षसि निहितं तुषार[3]किरणेन[4] ।
[5]नलिनीदलमतिललितं
कलयति शङ्कां कलङ्कस्य ॥ 24 ॥

सूर्य के ताप से चन्द्रमा की किरणों के समान अति कोमल नलिनीदल को हृदय पर रखा हैं। जो कलंक की शंका को पैदा कर रहा है।

पियूषपूरितममुं
हिमकरकलशं निशा नयन्तीयम्[6] ।
[7]उच्छलनशङ्क[8]याङ्कं
नव[9]कुशनिवहं निवेशयति[10] ॥ 25 ॥

अमृत से भरे चन्द्रमा रूपी कलश को निशा ले जा रही है और उछलने की शंका से नवीन कुशा घास रूप कलंक को रख रही है।:

---

1. त. वल ।
2. अ. $अ_1$ म. "रिन्दु" नास्ति ।
3. म. कर इत्यधिकम् ।
4. अ. $अ_1$ न नास्ति ।
5. म. वलिनी ।
6. अ. $अ_1$ म. तपयन्तीयम् ।
7. म. उल्ल ।
8. अ. शङ्कायां ।
9. म. लव ।
10. म. शपन्ति ।

सन्ध्यानलचलदम्बर—
काचघटीतस्तमोऽगरुण:[1] ।
गलितं तदेकसारं
हिम[2]करपुटके कलङ्कमाकलये ।। 34 ।।

गहन अन्धकार से भरे आकाश रूपी कांच घड़ी से सन्ध्या की आग से पिघलकर गिरा हुआ एक सार होकर चन्द्रमा रूपी दोने में कलंक के रूप में समझता हूँ ।

विधिना विधुं विदधता
लवणिमधि[3]गतं व्ययीकृ[4]तं सकलम् ।
असकलमिदमिति परिधृ[5]त—
मन्तःकुहरं कलङ्कमिषात् ।। 35 ।।

ब्रह्मा ने चन्द्रमा को वनाते समय समस्त सौन्दर्य एकत्रित करके सोचते हुए कि यह असम्पूर्ण है कलंक के वहाने से अन्धकार को इसके मध्य में रख दिया ।

मनसोऽधिकतररंहसि
हिममहसि रथे स्मरस्य वीरस्य
उल्लसति नीलकेतन—
मिदमाकलये कलङ्कममुम् ।। 36 ।।

मन से भी अधिक वेगवान वीर कामदेव के चन्द्रमा रूपी रथ पर इस नीली पताका को कलंक के रूप में मानता हूँ ।

नभसः सरसः सरितः[6]
तिमिरवराहस्य कान्दिशी[7]कस्य ।
वदनादिन्दो[8] गलितं
कमपि कसेरु[9] कलङ्कमाकलये ।। 37 ।।

---

1. त. गुरुणः ।
2. म. किम ।
3. अ. $अ_1$ धितव्य, त. चित, म धिक्तं, र. वितं ।
4. $अ_1$ प्रीछतं अ. पीछतं ।
5. त. म. र. हृत ।
6. त स्मरतः, र सरतः ।
7. अ. शो. ।
8. अ. $अ_1$ म. दुं ।
9. त. सेरूं लुप्तम् ।

आकाश के सरोवर और नदी से डर कर भागते हुए अन्धकार रूप वराह के मुख से गिरे हुए मोथे की जड़ को मैं कलंक के रूप में समझता हूँ।

दिवसपति[1]मनुसरन्त्या
सहसा[2] रागेण सन्ध्यायाः।
हृत[3] इव करेण शशिना
नीलनिचोलः[4] कलङ्कोऽयम् ॥ 38 ॥

अचानक अनुराग से सूर्य का अनुसरण करती हुई सन्ध्या का शशि के द्वारा अपने हाथ से हटाया हुआ यह नीला अवगुण्ठन कलंक ही है।

पितुरङ्के[5]विलुठन्तीं
रेवामेवाङ्क[6]दम्भतः शशिनः।
कलये दर्शनमात्रा—
[7]दुपरति दुरितानि या हरति ॥ 39 ॥

पिता की गोद में खेलती हुई रेवा को ही कलंक के बहाने से धारण किए हुए चन्द्रमा के दर्शन मात्र से शान्ति मिलती है और पापों का नाश करता है, ऐसा मैं समझता हूँ।

कलयामि वदनमण्डल—
मतरुणहरिणस्य लांछनं शशिनः।
कवलिततिमिरतृणस्य
श्रमभररोमन्थमन्थरितम् ॥ 40 ॥

अन्धकार रूपी घास को निगलते हुए युवा हिरण के श्रमयुक्त जुगाली से शिथिल मुखमण्डल को चन्द्रमा का कलंक समझता हूँ।

---

1. म. यति।
2. अ. $अ_1$ म. महसा।
3. अ. $अ_1$ म हृदय।
4. अ. $अ_1$ म. लश्चोलः, इतः परं समुल्लसतीत्यधिकम्।
5. अ. $अ_1$ म. पि।
6. त. काङ्क।
7. त. दुपदुरितानि, म. दुरितास्त्वया।

गगने यामुनसलिले
खेलति बल[1] इन्दुमण्डलच्छलतः ।
मध्ये कलङ्कदम्भात्
परिकरनीलांशुकं कलयन् ॥ 48 ॥

इस आकाश रूपी यमुना के जल में बलराम चन्द्रमण्डल के बहाने से खेलता है और उसके मध्य में कलङ्क के व्याज से नीलावस्त्र धारण किए हुए है।

अन्धकमिवान्धकारं
धवलगवा[2] धवलकरमहेशोऽयम्[3] ।
[4]दलयन्नुदयति कलयन्
करिवरकृत्ति[5] कलङ्कमिषात् ॥ 49 ॥

जैसे महादेव अन्धकासुर का नाश करते हैं, वैसे ही चन्द्रमा अन्धकार को मारता हुआ (नष्ट करता हुआ) उदय हो रहा है और कृष्ण वर्ण हाथी की आकृति को कलङ्क के बहाने से धारण किए हुए है।

शशधरमौक्तिकसौधे
त्रिभुवनजयिनो मनोजराजस्य ।
विलसति कलङ्कदम्भात्
मरकतमयमेव सोपानम् ॥ 50 ॥

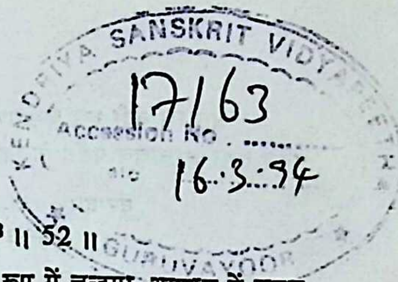
तीनों भुवनों को जीतने वाले मन्मथ के शशि रूपी मोतियों के महल में मरकतमयी सीढ़ी ही कलंक के छल से चमकती है।

मारस्त्रिभुवनवीरः
तदमलफलकं नु मण्डलं शशिनः ।
मध्ये विलसति नीलो
हस्तावापः कलङ्कपटेन ॥ 51 ॥

निर्मल फलक रूप चन्द्रमण्डल के मध्य में त्रिभुवन वीर कामदेव, नीले हाथों वाला, कलंक के बहाने से शोभित होता है।

---

1. अ. $अ_1$ चल, त नलः ।
2. $अ_1$ धवलगिवा, त. धवलगतानन्द्रिना ।
3. त. महेशस्सोऽयम् ।
4. त. लयन् उदयं ।
5. अ. करिकरकृति, $अ_1$ करिकरिकृति,
त करिवरवृति, म करिकरकृद्धि ।



अभिनवरमणी[1] रजनी
नीवीगुच्छोऽम्बरे[2] चन्द्रः ।
उदरे तस्य कलङ्को
नीलं कौशेयमेतदुल्लसितम्[3] ॥ 52 ॥

सुन्दर रमणी रूपी रजनी की नीवी के रूप में चन्द्रमा आकाश में चमक रहा है, उसके कटि प्रदेश में यह नीला रेशमी वस्त्र कलंक के रूप में चमक रहा है।

ताराहारालिजुषः
तारापतिविमलमेखला[4]रत्ने[5] ।
नाभी[6]कुहरछाया
वलति रजन्या[7] कलङ्कमिषात् ॥ 53 ॥

चन्द्रमा के निर्मल मेखला रूपी घेरे में तारों से भरी रात की नाभि के गर्त की छाया कलंक के वहाने से चमक रही है।

[8]मण्डलमखण्डमिन्दो—
रचलं कैलासमेव कलयेऽहम्[9] ।
तत्र कलङ्कव्याजाद[10]—
विरलश्रृङ्गार[11] निर्झरः स्फुरति ॥ 54 ॥

सम्पूर्ण चन्द्रमण्डल स्थिर कैलाश ही है, वहाँ पर निरन्तर बहता हुआ श्रृंगार रस का झरना कलंक के वहाने से चमक रहा है।

वियति सरिति विधुबिम्बे
नावि[12] कलङ्को नु कर्णधारोऽयम् ।
उदयास्ताचलतीरे[13]
पारावारे[14] समानेतुम्[15] ॥ 55 ॥

---

1. त. मदरमणीयैः ।
2. अ. $अ_1$ उदरे ।
3. अ. $अ_1$ त. दुल्लसति ।
4. म, ले, अ. $अ_1$ लो ।
5. अ. रले ।
6. अ. $अ_1$ नावा, म. नीवी ।
7. $अ_1$ म् ।
8. म. अक्षरत्रयं लुप्तम् ।
9. म. $अ_1$ कलयेह ।
10. म. तृ, $अ_1$ दि ।
11. म. लादागार ।
12. अ. अ, प्राप्ति कलङ्को न, म. भारतकालकोन, त. नापि कलङ्को न ।
13. अ. $अ_1$ उदयस्तिचलतीरे ।
14. त. पदमिदं भ्रष्टम् ।
15. अ. तु, $अ_1$ तू, त. नेत्रम् ।

आकाश नदी रूप चन्द्रमण्डल में यह कलङ्क मल्लाह ही है जो उदयाचल पर्वत तथा अस्ताचल पर्वत के किनारों पर समान रूप से ले जाता है.।

दूरादागतवत्या[1]
सपदि[2] रजन्याः कलङ्ककपटेन ।
प्राची हिमकरभाजन
निहितलवङ्गान्यु[3]पायनीकुरुते । 56 ॥

पूर्व दिशा दूर से आई हुई रात्रि को कलंक के बहाने से चन्द्रमा रूपी पात्र में रखी हुई लौंगों को झटपट उपहार में देती है।

उदयाचलनिज[4]भवना—
द्गगने[5] विपणौ पुरस्कृतं निशया[6] ।
इन्दुसितोपलपिण्डं[7]
वलति[8] कलङ्कः पिपीलिका तत्र ॥ 57 ॥

रात्रि ने उदयाचल रूपी अपने भवन से आकाश रूपी बाज़ार में चन्द्रमा रूपी मिश्री खण्ड को सामने रखा हुआ है, वहाँ पर चींटीयाँ कलंक के रूप में घूम रही हैं।

विजिगीषोः कुसुमेषो—
र्विधुमयदधिभाजनं रजनी ।
सहसा नयति[9] पुरस्ता—
दुपचितमन्तः कलङ्कदूर्वाभिः ॥ 58 ॥

रात भीतरी कलंक रूपी दूर्वा से युक्त चन्द्रमा रूप दही पात्र को जीतने वाले कामदेव के सामने शीघ्र प्रस्तुत कर रही है।

---

1. म. गवत्यां वा ।
2. त. ति ।
3. म. वेगानु, अ, अनुपायनी ।
4. म. लानत, अ. नज. ।
5. अ. ङ्नगणे $अ_1$ द्गणे, म. गौणे ।
6. अ. $अ_1$ म. सिशया ।
7. अ. $अ_1$ म. मिन्दुं ।
8. त. चलति ।
9. अ $अ_1$ न लुप्तम् ।

तर्पयितुं[1] पतिम[2]मृतैः
पुलिनतटे गगनगङ्गायाः ।
हिमकरराजतशुक्तौ
वहति रतिः किल कलङ्कतिलपटलम् ॥ 59 ॥

रति आकाश गंगा के रेतीले तट पर पति कामदेव को अमृत से तर्पण देने के लिए चन्द्रमा रूपी चाँदी से निर्मित चमकते हुए तिल पटल को कलंक रूप में धारण करती है ।

गगने नलिनीपत्रे
सद्यः[3] प्रेताय कुसुमचापाय ।
र[4]तिरोदनमयपिण्डं[5]
वितरति चन्द्रं कलङ्कमाषान्नम् ॥ 60 ॥

रति शीघ्र मरे हुये अपने पति मदन को आकाश रूप नलिनी पत्र पर कलंक युक्त चन्द्रमा रूप माषान्नयुक्त ओदनपिण्ड दे रही है ।

भर्तरि सवितरि गतव[6]ति
पायसपिण्डं सु[7]धाकरं प्राची ।
व्यरचयदम्बरकु[8]शभुवि
चलति[9] कलङ्कस्तदन्तरे काकः[10] ॥ 61

पति सूर्य देव के चले जाने पर पूर्व दिशा आकाश में चन्द्रमा रूप क्षीर—पिण्ड को बनाती है और उसके मध्ये में कुशा रूपी कलंक भूमि पर हिलता हुआ दिखाई देता है ।

शशिनि[11] सुधामयभूमौ
चलति कलङ्कैकना[12]गवल्लीयम्[13]

---

1. अ. अ$_1$ तपर्यंति ।
2. अ. पित्र् अ$_1$ पित. म यतिहित ।
3. अ. अ$_1$ सक्य:, म सख्य:,
4. अ. अ$_1$ दृति ।
5. म. मिन्दुं
6. म. मतवति ।
7. म. शुभ
8. त. कृश, म. कूर्न, अ. अ$_1$ कुस :
9. त. वलतिं ।
10. अ. अ$_1$ काकम् ।
11. त. नः ।
12. अ. अ$_1$ म. भाज ।
13. अ वल्लीये

रजनीवदनमविरतं
[1]रंजितमातन्वती[2] रूचिरम्[3] ॥ 62 ॥

चन्द्रमा रूप अमृतमय भूमि पर कलंक रूपी पान की वेल खिलती है और रात अपने मुख को लाल और सुन्दर बना लेती है।

व्यतल[4]जलाशयनिहिता[5]
जिगमिषुमदनस्य रजतघटिकेयम्।
विधुमण्डली तदन्तः
स्फुटति कलङ्कच्छलात्सु[6]षिरम् ॥ 63 ॥

जाना चाहते हुए कामदेव की यह चाँदी की घड़ी के रूप में चन्द्रमण्डली तलरहित तालाब में रखी हुई है, इसके मध्य में कलंक के बहाने से छिद्र चमक रहा है।

कर्पूरमुपहरन्ती
तुहिनकरं मकरकेतवे रजनी।
कलयति कलङ्कदम्भा–
त्तदुपरिं मरिचानि रक्षायै ॥ 64 ॥

कपूर को उपहार में देती हुई रात उसके ऊपर रक्षा के लिए मिर्चों को कलंक के बहाने से रख रही है।

रुचिरात्कलयति चिकुराद्[7]
रजनी दधती मृगाङ्ककङ्कतिका[8]म्।
तल्लेश[9]एव[10] लक्ष्यः
कलयति शङ्कां कलङ्कस्य ॥ 65 ॥

निशा सुन्दर केशों में चन्द्रमा रूपी चितकबरी कंघी को धारण किए हुए है, उसका थोड़ा सा भाग दिखाई देने पर कलंक की शंका होती है।

---

1. त. अक्षरलोप :।
2. म. न्वते।
3. त. सुचिरम्।
4. अ. अ$_1$ व्यु, म. र. द्यु. त. शीत।
5. म. विहिता
6. अ. अ$_1$ शुषिरम्।
7. अ. अ$_1$ चिकुरा।
8. अ$_1$ मृगाङ्कतिकाम्।
9. अ. हृल्लं, म. अ$_1$ हृल्लेश।
10. अ. अ$_1$ रावलक्ष्यः।

महिषः कलङ्कमिषतो[1]

हिमकरसरसः समुन्मिषति ।

अपसारयति[2] तुरङ्गा—

निति मिहिरः चरमभूभृतः कुहरे ॥ 66 ॥

कलंक के बहाने से चन्द्रमा रूपी तालाब से भैंसा निकल रहा है और भैंसा मछली पकड़ने वाले को अन्तिम पहाड़ के गढ़े में फेंक रहा है।

प्रतिपादयतः शून्ये

पथि पृथु पीयूषमिन्दुकासारम्

अङ्कमिषा[3]त्कुसुमेषो :

श्याम[4]लिता यूपयष्टिमि[5]ह ॥ 67 ॥

शून्य मार्ग में अमृत से भरे चन्द्रमा रूपी तालाब को प्रतिपादित करते हुए कलंक के बहाने से यह कामदेव यज्ञ-दण्ड के समान कृष्णवर्ण धारण किए हुए है।

लवणिमनिधेः स्[6]मरस्य

स्मृत्वैवाङ्गानि धन्या[7]नि ।

इन्दुः कलङ्कदम्भा—

न्मलिनं निः[8]श्वासमावहति ॥ 68 ॥

अत्यधिक सुन्दर कामदेव के अंगों का स्मरण करके धन्य होते हुए चन्द्रमा कलंक के बहाने से मानो मलिन सांसों को छोड़ रहा है, अर्थात् आहें भर रहा है।

अम्बरपारावारे

वणिजो मदनस्य शीतयु[9]धिपोते ।

गुणवृक्ष एव[10] साक्षात्

कलयति शकां कलङ्कस्य ॥ 69 ॥

---

1. अ$_1$ मि इत्यधिकम् ।
2. अ. अवसरयति, अ$_1$ अपसरयति, त. सारयितुं ।
3. अ. अ$_1$ अंकुशितात्
4. अ. अ$_1$ श्यामनिता ।
5. त. रियम् ।
6. अ. अ$_1$ सरस्य ।
7. अ अ$_1$ धन्वानि ।
8. अ. अ$_1$ म. विश्वास ।
9. म. सुधि । त. र. रूचि ।
10. त. इव ।

आकाशीय समुद्र में व्यापारी कामदेव के चन्द्रमा रूपी युद्धपोत में मस्तूल ही साक्षात कलंक की शंका को उत्पन्न कर रहा है।

कलयति कुटिलभ्रुकुटी—
मोषधिनाथः कलङ्ककपटेन।
मयि जीवति कथमतनु—
र्मम[1] मित्रं कुसुमधन्वेति ॥ 70 ॥

मेरे जीवित रहने पर यह अशरीर कामदेव कैसे मेरा मित्र बन सकता है? इस कारण चन्द्रमा कलङ्क के वहाने से टेढ़ा कटाक्ष किए हुए है।

शिशिरकिरणनवतल्पं
प[2]रिशीलयतः स्मरस्य कुतुकेन।
कलयति कलङ्कशंकां
नीलक्षौमोपधानमिदम् ॥ 71 ॥

कुतूहल वश चन्द्रमा को नया विस्तर बनाने वाले कामदेव का यह नीलाकार रेशमी तकिया कलंक की शंका को उत्पन्न करता है।

स्फुरदम्बरैकदे[3]शे
दन्तपुटे शीतकरविम्बे।
लोचनमुल्लासयितुं
वहति कलंकं नु कज्जलं रजनी ॥ 72 ॥

चमकते हुए आकाश में दन्त विवर रूपी चन्द्रमण्डल में रात्रि आँख को खोलने के लिए मानो कलंक के रूप में कज्जल को ही धारण किए हुए है।

गगनगृहेन्दुगवाक्षे
लाञ्छनलूताप[4]तिः कोऽपि।
बध्नाति सपदि सकलं
प्रेममयेनैव तन्तु[5]ना भुवनम् ॥ 73 ॥

आकाश भवन रूपी चन्द्रमा के झरोखे में कोई कलंक रूपी मकड़ा शीघ्र ही प्रेममय तन्तु से समग्र विश्व को बाँध रहा है।

---

1. अ$_1$ लिपिकार की भूल से "नुर्ममम" को आवृति हुई है।
2. अ$_1$ प लुप्तम्।
3. म. वेशे।
4. अ. अ$_1$ पति नास्ति।
5. अ. अ$_1$ सुधाया।

मदनमहीपतिपु[1]रतो
वहति मुखेनैव वादयितुम् ।
रजनी हिमकरशङ्ख[2]
मूले कुहरं[3] कलङ्क एवास्य ।। 74 ।।

कामदेव रूपी राजा के सामने मुख से बजाने के लिए रात चन्द्रमा रूप शंख को धारण किए हुए है, मूल में गढ़ा कलंक ही है ।

कलयति कलंककपटात्
कमपि किशोरं शशी निशीथिन्या:[4] ।
इयमपि तमनुसरन्ती[5]
गणयति न[6] तमोंऽशुकस्खलनम्[7] ।। 75 ।।

चन्द्रमा कलंक के ब्याज से रात के किसी बालक को धारण किए हुए है। वह भी उसका अनुसरण करती हुई अन्धकार रूपी रेशमी वस्त्र की पर्तों को गिन रही है ।

रजनी काचन रमणी
शशधरमुखमण्डले तस्या: ।
रस[8]लम्पटमलिकलभं[9]
कमपि कलंकं समाकलये ।। 76 ।।

रात्रि एक रमणी है उसके चन्द्रमण्डल रूप मुखमण्डल पर रस के लोभी किसी भँवरे को कलंक के रूप में समझता हूँ ।

रजनिरमण्या हिमरुचि—
ताराहारावलीतरले ।
नीलगुणस्फुरणे[10]यं
कलयति शंकां कलङ्कस्य ।। 77 ।।

रात्रि रूपी स्त्री के द्वारा चन्द्रतारक हार के मध्य मणि में चमकती हुई नीलिमा कलंक की शंका उत्पन्न कर रही है ।

अधुना पदमनुधाता
स्[11]मर इह विजयी महाराज:
उडुकुसुमे पथि रजनी
शशिनि शरावेऽङ्कधूपमावहति ।। 78 ।।

---

1. अ. $अ_1$—दु ।
2. अ. $अ_1$ म—शीवष ।
3. अ. $अ_1$ कठरं, म कुठारं ।
4. अ. मा. ।
5. अ. मी ।
6. $अ_1$ त ।
7. त. शुकः खलना ।
8. अ. $अ_1$ रल ।
9. त. कलमं ।
10. अ. $अ_1$ लै
11. अ. $अ_1$ सार: ।

इस समय ही विजयी महाराज कामदेव आकाश में जा रहे हैं और नक्षत्र पुष्प रूपी मार्ग पर रात चन्द्रमा रूपी थाली में किसी सुगन्धित द्रव्य को कलंक के रूप में धारण किए हुए है।

वेदयितुं विरहदशां
गतमिव चेतश्चिराच्चकोरीणाम्।
शशिनि शुचा मलिनीकृत
मभिनीलं किमपि[1] लक्ष्मैतत् ॥ 79 ॥

बहुत देर से गए हुए के समान चकोरियों की वियोगावस्था को बतलाने के लिए चन्द्रमा में उनके शोक से मलिन नील वर्ण ही यह कलंक है।

अनुरागादभिसरतो
ल[2]ङ्घितजलधेः कलाधिनाथस्य।
रजनीमुखचुम्बनतः
शिथिलितमलकं कलङ्कमाकलये[3] ॥ 80 ॥

प्रेम से अभिसार करते हुए समुद्र पार किए चन्द्रमा के द्वारा रजनी के मुख का चुम्बन करने से ढीले हुए केशों को कलंक के रूप में समझता हूँ।

सितमकरमेव कलये
शशिनं मदनस्य केतनीभूतम्[4]।
द[5]ण्डीकृतनववंश[6]—
च्छायालक्ष्मच्छलात्तत्र ॥ 81 ॥

कामदेव के झण्डे में सफेद मछली को चन्द्रमा के रूप में समझता हूँ और वहाँ पर दण्डाकार बनाए हुए नए बाँस की छाया कलंक के बहाने से दृष्टिगोचर हो रही है।

कुसुमशरस्य जिगीषोः
श[7]शिनं धवलं वितानमाकलये।
मध्ये स्यूतो[8] विलसति
नी[9]लश्चोलः कलङ्कमिषात् ॥ 82 ॥

कामदेव के शुभ्र चन्दोवे को चन्द्रमा के रूप में समझता हूँ। मध्य में सिला हुआ नीला वस्त्र कलंक के बहाने से चमकता है।

---

1. अ. "कि" नास्ति।
2. म. लेपित।
3. म. मूलकङ्कले समाकलये।
4. म. अ. $अ_1$ ते।
5. म. द्रुही।
6. म.—नंश।
7. म. शशिमण्डलं।
8. अ. $अ_1$ स्यूतं।
9. म. लीन।

कुसुमशरस्य शराणां
रश्मिभ्रमिते[1] तुषारकरशाणे[2] ।
लोहमयीं भ्रमि[3] यष्टिं
मध्ये कलये कलङ्कममुम् ॥ 83 ॥

चन्द्रमा रूपी कसौटी पर कामदेव के बाणों के किरण जाल में मध्यवर्ती लोहे की घूमती हुई छड़ी को मैं कलंक समझता हूँ ।

[4]रजनीना[5]सा निहितं
मुक्ताफलमिन्दुमण्डलं कलये ।
चिवु[6]कतिल[7]कप्रतिकृति
फलनं चलत्[8] कलङ्कच्छालातन्न ॥ 84 ॥

निशा की नासिका में रखे हुए मुक्ताभूषण को चन्द्रमण्डल समझता हूँ और वहां हिलते हुए कलंक के व्याज से माथे पर तिलक की छवि देख रहा हूँ ।

सुन्दरकन्दु[9]कमिन्दुं
रजनिरमण्याः करे कलये ।
मध्ये तदङ्गुलीयक—
मरकतरुचिमञ्जरीकलङ्कोऽयम् ॥ 85 ॥

रात्रि रूपी युवती के हाथ में चन्द्रमा को सुन्दर गेंद के रूप में समझता हूँ । मध्य में उसकी अँगूठी की मरकत मणि का किरण जाल कलंक ही है ।

स्मरशबरनीमयानं
जलधेः कमपीन्दुमण्डलं मीनम् ।
कलये कलङ्कमन्त—
निगडितबडिशं वहन्तममुम् ॥ 86 ॥

समुद्र से कामदेव रूप भील के द्वारा ले जाए जाते हुए चन्द्रमण्डल रूप मत्स्य को कांटे के द्वारा बांधे हुए है, उसे कलंक के रूप में समझता हूँ ।

1. अ. अ$_1$ म. भ्रमणे
2. र. जाले, म. सरशाले, त किरणे ।
3. अ$_1$ भ्रमं. म. भ्रमं ।
4. त. यह आर्या नहीं है ।
5. म. मीमा ।
6. र. म. चिकवु ।
7. अ. अ$_1$ म. तिल ।
8. र. अ. अ$_1$ म. चलन् ।
9. त. कन्दु ।

दमनकतरुरङ्कुरितः
शशधरसिकतातले कलङ्कमिषात् ।
हरकोपतापमतुलं
गमयति मद[1]नस्तले यस्य ॥ 87 ॥

निशीथ रूपी रेतीली सतह पर कलंक के व्याज से उत्पन्न हुआ दमनक वृक्ष कामदेव के प्रति महादेव की उग्र क्रोधाग्नि को पैदा करता है।

अम्बरवराहदंष्ट्रा
कोटरकोटीनिविष्टमुस्ता[2]भ्याः ।
रुचिमनुहरति सुधांशो
रुदरे नीलः कलङ्कोऽयम् ॥ 88 ॥

चन्द्रमा के मध्य में यह नीला कलंक ही है, आकाश रूपी वराह की दाढ़ के छिद्र में स्थित मोथे की जड़ की कान्ति का अनुकरण करती है।

[3]अनुमिहिरं गच्छन्त्याः
सन्ध्यायश्चरणभूषालिः[4] ।
शशिमण्डलमिद[5]मध्वनि
मध्ये पङ्कं कलङ्क[6]माकलये ॥ 89 ॥

सूर्य का अनुसरण करती हुई सांझ की सुशोभित चरण पंक्ति है इस चन्द्रमण्डल रूप मार्ग के मध्य में उस कीचड़ को कलंक रूप ही समझता हूँ।

सार[7]ङ्गे हरिणाङ्के
रजनीहरिणीदृशः[8] कलये[9] ।
नयनाञ्चलरुचिवीची[10]
वलनं मध्ये कलङ्कममुम् ॥ 90 ॥

निशा रूपी मृगी की आँखों के चितकबरे मृग रूपी चन्द्रमा में नयनों की सुन्दर तरंगों के चक्र को कलंक समझता हूँ।

---

1. अ. $अ_1$ ने।
2. म. मुखाद्याः।
3. म. ऋतु।
4. म. भूषालितम्. त. र. भूषणं गलितम्।
5. त. दं लुप्तम्।
6. त. पदं लुप्तम्।
7. अ. $अ_1$ त ताण्ङ्के।
8. $अ_1$–दशा।
9. अ. $अ_1$ षे।
10. अ. $अ_1$ ची नास्ति।

रजनीकरे[1]णुपरिगत
मद[2]नोस्तूणीरमिन्दु[3]माकलये।
शरभरपक्षछाया
लांछनदम्भेन लक्ष्यते तत्र ॥ 91 ॥

रजनीश को रजनी रूपी हाथिनी से घेरे हुए कामदेव का तूणीर समझता हूँ। बाणों के पंखों की छाया वहाँ कलंक के व्याज से दिखाई देती है।

द्विजपतिरिह[4] विष्णुपदे
कलयन्नङ्के कलङ्करुद्राक्षम्।
तिमिरतिलाशनशाली
चरति तपः स्मरसमुदयाय ॥ 92 ॥

इस आकाश में अन्धकार रूप तिल को खाने वाला चन्द्रमारूपी ब्राह्मण कामदेव को वश में करने के लिए तपस्या कर रहा है, मध्य में (गले में) रूद्राक्ष की माला को कलंक समझता हूँ।

स्मरसुरकरिणः[5] सरसो
ग[6]गनादुन्मज्जतः सहसा।
शशिमण्डलैककुम्भे[7]
श्यामलचमरं कलङ्कमाकलये ॥ 93 ॥

आकाश रूप तालाब से सहसा निकलते हुए मदन रूप देवताओं के हाथी ऐरावत के चन्द्रमण्डल रूप गण्डस्थल में श्याम वर्ण चमर को कलंक समझता हूँ।

सीव्यन्त्या युवमनसी
यामिन्याः किल कलङ्कमयसूचीम्।
प्रेमैकतन्तुपिण्डे
शशिनि विनिहितामिमां[8] कलये ॥ 94 ॥

युवकों के मन में क्रीड़ा रूपी कलंक को सींती हुई यामिनी के प्रेम रूप गोले में रखी हुई सूई को देख रहा हूँ।

---

1. अ. $अ_1$ निकरेपूरिगत।
2. त. म. र. त.।
3. अ. $अ_1$ म. मिषु।
4. अ. $अ_1$ म. व।
5. म. णे।
6. अ. $अ_1$ गंगा।
7. म. अ. $अ_1$ कुम्भ, "म" अक्षरलुप्तम्।
8. म. मितां।

नभसि सरसि नवतारा
कुमुदिन्याः कन्दमिन्दुमाकलये ।
दिवसद्विपपरिमर्दन—
पदमिदमङ्के कलङ्कमिषात् ॥ 95 ॥

आकाश रूप तालाब में नूतन तारा रूपी नलिनी की गाँठदार जड़ को चन्द्रमा समझता हूँ और इसके मध्य में कलंक के बहाने से दिन रूपी हाथी का पांव है।

र[1]मयितुमविरतमेक
स्तारादारान्[2] कुमुद्वतीं रजनीम् ।
कल[3]यति कलङ्ककपटात्
कामपि गुटिकां कलानाथः ॥ 96 ॥

अकेले ही निरन्तर बहुत सी तारा रूपी पत्नियों, कमलिनी तथा राका से रमण करने के लिए राकापति कोई गोटी कलंक के वहाने से लिए हुए हैं।

स्म[4]रविशिखानिह सविषा[5]न्
कर्तुं रजनीशसम्पुटे रजनी
कलयति कलङ्क[6]गरलं
तदिमे[7] सम्मूर्च्छयन्ति जनान् ॥ 97 ॥

चन्द्रमा रूपी डिब्बी में मन्मथ के बाणों को विष युक्त करने के लिए कलंक रूपी जहर को धारण किए हुए हैं। इसीलिए यह लोगों को मूर्छित करते हैं।

उदयगिरिपुराणकोशा[8]
न्निरकाशयदिन्दु[9]मण्डलं मुकुरम् ।
रजनी चिरेण निबिडित—
तन्मालिन्यं कलङ्कमा[10]कलये ॥ 98 ॥

उदयाचल रूप पुराणकोश से रजनी ने देर से रखे हुए चन्द्रमण्डल रूप दर्पण को निकाला, उसकी मलिनता को कलंक के रूप में समझता हूँ।

---

1. अ. $अ_1$ मर, म. भर।
2. अ. $अ_1$, म. दारात्।
3. म. कलया
4. $अ_1$ विस्मर इत्यधिकम्।
5. अ. $अ_1$ शा
6. $अ_1$ र इत्यधिकम्।
7. म. दं में।
8. अ. $अ_1$ त. षा।
9. $अ_1$ रिन्दें।
10. त. कलंकमिषात्।

तुहिनकरस्[1]य कलङ्कं
केशवचक्षु:कनीनिकां कलये ।
यत्पुरत:[2] प्रतिकमलं[3]
सपदि नवोढेव[4] लीयते[5] लक्ष्मी: ॥ 99 ॥

शशि के कलंक को विष्णु के नयनों की पुतली के रूप में समझता हूँ, जिसके सामने नई दुल्हन लक्ष्मी छिपती फ़िरती है ।

विधुदधि[6]तण्डुलपिण्डं
लांच्छनबदरीफ़लै:[7] विधिर्वहति ।
अहह चिरादिह सूते[8]
कमपि कुमारं स्मरं रजनी ॥ 100 ॥

ब्रह्मा कलंक रूप बदरी फ़लों से युक्त चन्द्रमा रूपी दही और चावल के पिण्ड को धारण करता है । बहुत देर के बाद यहाँ निशा स्मर रूप किसी कुमार को जन्म दे रही है ।

इति कविकङ्क[9]णभणितं
शतकं तनुतां मृगाङ्कस्य ।
विदुषो रुचिमचिराद्दिव[10]
ककुभा[11]मुदयो मृगाङ्कस्य ॥ 101 ॥

कवि कङ्कण द्वारा कहा गया 'मृगाङ्कशतक' विद्वानों में देर तक आनन्द पैदा करे जैसे पूर्व दिशा में उदय होता हुआ चन्द्रमा पैदा करता है ।

इति श्रीकविकङ्कणभणितं मृगाङ्कशतकं
समाप्तम् ।

---

1. त. करस्य नास्ति ।
2. अ. $अ_1$ म. यं सुरतः ।
3. म. ले ।
4. $अ_1$ नवोदेव, म नवो मे व ।
5. अ. लीवते ।
6. त. दधिषं ।
7. अ. $अ_1$ वदलं, म. वदनं, त दले ।
8. त. विरादिहत्पूते ।
9. त. कलङ्क
10. त.—चिरा.............विवं ।
11. म. मुमयो ।

